International Journal of Applied Research 2016; 2(7): 569-570

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(7): 569-570
www.allresearchjournal.com
Received: 20-05-2016
Accepted: 25-06-2016

गुंजन कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय–हिन्दी–विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
गुंजन कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय–हिन्दी–विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा, बिहार, भारत

वर्तमान संदर्भ में कबीर के व्यंग्य की प्रासंगिकता

गुंजन कुमारी

सारांश
संसार में मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना हेतु जिन–जिन महापुरुषों ने अपने जीवन काल में मानव हित के लिए संघर्ष करते रहे हैं, उनकी प्रासंगिकता प्रत्येक युग में ज्यों की त्यों बनी रहती है और तब तक बनी रहेगी जब तक मनुष्य का अस्तित्व कायम रहेगा। वैसे भी मानवतावाद ही एक ऐसा मुख्य साधन है तो एक ऐसे समाज का निर्माण करता है जिसमें समता, सदाचार तथा नैतिकता की नींव कायम रहती है।

प्रस्तावना
आज जब हम चारों ओर व्याप्त सामाजिक जड़ता तथा अराजकता की ओर उन्मुख होते हैं तब व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति का शंखनाद करने के लिए युगपुरुष की आवष्यकता महसूस करते हैं। कबीर का कालजयी व्यक्तित्व इस समय भी हमारे लिए ज्योतिपुंज है। कबीरदास मानवता के साक्षात् प्रतिमूर्ति एवं धार्मिक सहिष्णुता तथा सामाजिक समरसता के अग्रदूत हैं। 'कागद' और 'मासि' से अनस्पर्षित कबीर इक्कीसवीं सदी के उच्च षिक्षित मानव से कहीं अधिक आधुनिक और प्रगतिषील हैं। कबीर की साखी, सबद और रमैनी आज भी उतनी ही प्रासंगिक एवं लोकप्रिय है जितनी मध्यकालीन समाज में थी।
कबीर अनपढ़ थे, किन्तु जगत को उन्होंने खुली आँखों से देखा–परखा था। वे कहते हैं– ''मैं कहता हौं आँखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी।'' अतः उनकी बानियों में जीवानुभवों से प्राप्त सत्य का साक्षात्कार होता है। यही कारण है कि लगभग छः सौ वर्ष पूर्व कही लिखी गई कबीर की बानियाँ आज भी इतना ही प्रासंगिक है।
बढ़ते समय के साथ जगत में भौतिक सुविधाएँ, साधन–सामग्री, सुख–वैभव आदि में वृद्धि अवष्य हुई है, किन्तु मानव सहज वृत्तियों में कोई विषेष परिवर्तन नहीं हुआ है। मानव सहज दुर्वृत्तियों के कारण मानव समाज में विसंगतियाँ आज भी मौजूद है। कबीर ने अपने युग की जिन–जिन विसंगतियों पर व्यंग्य किया था, वह आज के आधुनिक युग में भी उतना ही प्रासंगिक, सार्थक और सटीक प्रतीत होता है।
इक्कीसवीं सदी के इस दौर में ज्ञान–विज्ञान, धर्म, जातियाँ, राजव्यवस्था और विचारों की अनेक शैलियाँ तथा जीवन एवं जगत की बहुत सी परम्पराएँ निरन्तर गतिमान है। नाना प्रकार के वैज्ञानिक उपकरणों (कम्प्यूटर, मोबाइल, इंटरनेट, टेलीविजन, रेडियो आदि) से सुसज्जित मानव धीरे–धीरे आध्यात्मिक जगत एवं पारिवारिक जीवन से कटता जा रहा। हमारा षिक्षित समाज सामाजिक कुसंस्कारों, अंधविष्वासों धार्मिक पाखण्डों, संवेदनाहीन सीमाओं और कर्मकाण्डों से उसी तरह ग्रस्त है जिस तरह विज्ञान और संचार तकनीकी विर्धन कबीर युगीन समाज ग्रस्त था। इस दृष्टिकोण से आज यदि कबीर के समग्र साहित्य, रचना–दर्षन की परत दर परत विष्लेषण एवं व्याख्या की जाए तो यह सिद्ध हो जाएगा कि उनके साहित्य में आज की ही नहीं बल्कि आने वाले हजारों वर्षों के समाज को नूतन जीवन–दृष्टि एवं दिषा देने का सामर्थ्य है। इसलिए वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कबीर के व्यक्तित्व एवं काव्य का अध्ययन भारत के नव–निर्माण के लिए उपयोगी एवं प्रासंगिक सिद्ध होगा। इसमें संदेह नहीं।
कबीर ने पौराणिक हिन्दु धर्म के बह्याचारों, धार्मिक पूजा, उत्सव, मूर्ति की उपासना, ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड आदि को ढ़कोसला समझकर उनका कटु विरोध किया है। कबीर ने ऐसे व्यक्तियों का विरोध किया है जो माला हाथ में लेकर फेरते रहते हैं, किन्तु उनका मन विषय–वासनाओं में डूबा रहता है। प्रभु का स्मरण मात्र दिखावा होता है–

''कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपणो, कहा फिरावै मोहि।।''[1]

कबीर की साखियों में समकालीन समाज तथा धर्म के स्वरूप का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है समसामयिक जीवन में कबीर साहित्य की उतनी ही उपादेयता है, जितनी आज विज्ञान की। इक्कीसवीं सदी के द्वितीय दषक में हमारे सम्मुख मंदिर–मस्जिद के झगड़े हैं, जातिगत, ऊँच–नीच का भेद एवं आरक्षण की ज्वलंत समस्याएँ हैं। आज देष का संसद भ्रष्ट और चरित्रहीन नेताओं की शक्ति प्रदर्षन का अखाड़ा बना हुआ है। सामाजिक, धार्मिक, नैतिक दृष्टि से हमारा समग्र परिवेष कलुषित होता जा रहा है। अष्लीलता आधुनिकता का प्रर्याय बना हुआ है। अपषब्दों का प्रयोग फैषन बन गया है। आचरण की शुद्धता एवं अतःकरण की पवित्रता के प्रति कबीर का आग्रह वर्तमान जीवन के लिए अनिवार्य एवं सार्थक प्रतीत होता है। अधिकांष सामाजिक और राजनीतिक विद्वेष, मनोमाबिन्य, अराजकता, विषाक्त वचनों का ही परिणाम है। आज के टूटते परिवार और बिखरते रिष्तों के पीछे मनुष्य की विकृत वाणी और अमर्यादित व्यवहार का ही सबसे बड़ा दोष है। सभ्य सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन की मधुरता के लिए उनकी वाणी–संयम की षिक्षा आज भी प्रासांगिक है। इस अध्ययन से यह भी पता चलता है कि कबीर का समग्र चिंतन समाज–सापेक्ष है। उनकी वाणी में मध्यकालीन समाज में प्रचलित वर्णव्यवस्था, जातिभेद, छुआछूत, ब्राह्मणों और अन्य उच्च वर्गों की अमानुषिकता, वर्णाश्रम एवं षटदर्षन आधृत सामाजिक वैषम्य का कड़ी आलोचना की है। ईष्वरीय रचना में ब्राह्मण–षुद्र की अभेदता का प्रतिपादन करते हुए कबीर ने मानव–मानव की एकता का शाष्वत संदेष दिया है, जो आज भी प्रासंगिक है।

छुआरछूत के विरुद्ध कबीर वाणी का स्वर अत्यधिक उग्र है। छुआछूत मध्यकाल की सबसे क्रूरतम और अमानवीय कुप्रथा थी। जातिगत भेदभाव और अस्पृष्यता जैसी घृणित कुसंस्कारों से हमारा आधुनिक समाज आज तक मुक्त नहीं हो सका है। निम्न जातियों की परछाई से भी दूर रहने वाले तथाकथित सफेदपोषों के दोहरे चरित्र का कबीर ने कच्चा चिट्ठा खोला है। समस्त जीवों को एक ही परमात्मा का अंष मानकर उन्होंने सामाजिक न्याय की अवधारणा प्रस्तुत की है–

''ऊँचे कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होय
स्वर्ण कलष मदिरा भरा, साधू निन्दे सोय।''[2]

हिन्दु और मुस्लिम के मध्य साम्प्रदायिक वैमनस्यता और विद्वेष की भावना कबीर कालीन समाज से आज कहीं ज्यादा उग्र है। धर्म के नाम पर देष में अनेकों दंगे हो चुके हैं तथा अब भी हो रहे हैं। राम जन्म–भूमि विवाद, बाबरी मस्जिद, गोधरा कांड, मुंबई आतंकवादी हमला, संसद पर हमला आदि जैसे कई दंगे इसके ज्वलंत एवं भयावह उदाहरण हैं। साम्प्रदायिकता की आग सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक स्थलों से लेकर षिक्षण संस्थानों तक में फैल चुकी है। मनुष्य अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए किसी भी सीमा तक जा सकता है। वह अपनी ही कही बात से मुकर्र जाता है। अपनी छवि को अच्छी दिखाने के लिए वह अच्छी और नीतिपूर्ण बातें करता है पर इनको अपने व्यवहार में नहीं लाता। कबीर ने ऐसे लोगों पर व्यंग्य किया है–

''जैसी मुख से निकसे, तैसी चाले नाहिं।
मानिष नहिं ते स्वान गति, बाध्या जमपुर जाहि।''[3]

कबीर की दृष्टि में जीवन हत्या सबसे बड़ा पाप है और पापी को मुक्ति किसी भी दषा में नहीं मिल सकती, चाहे वह हिन्दु हो या मुसलमान। सबसे निरीह प्राणी है–बकरी, जो लोग बकरी खाते हैं और उसकी खाल निकालते हैं, उनका तो बकरी से भी बुरा हश्र होगा। इसी तरह खुदा को प्रसन्न करने के लिए मुसलमान दिन यह रोजा रखते हैं, लेकिन रात को रोजा खत्म होते ही गाय को मारते हैं। कितना विरोधाभास है व्यक्ति की कथनी और करनी में। एक ओर हत्या और दूसरी ओर खुदा से बंदगी। ऐसे में खुदा कैसे प्रसन्न हो सकता है–

''दिन में रोजा रहत है, रात हनत है गाय
यह खुन वह बंदगी, कहुँ क्यों खुषी खुदाय।''[4]

कबीर गरीब व्यक्ति को अमीर से श्रेष्ठ मानते हैं। वे गरीबों को स्वाभिमान से जीवन यापन करने हेतु हमेषा प्रेरित करते रहे। उनका कहना है कि गरीब होना कोई पाप नहीं है इसलिए हीन भावना से ग्रस्त होना जरूरी नहीं है। आधुनिक काल में भी गाँधी जी ने कबीर के विचारों का समर्थन करते हुए 'दरिद्रनारायण' की बात कह डाली एवं कबीर की बात को दोहराया। मनुष्य स्वार्थवष अपनी आवष्यकताओं से ज्यादा धन कमाने की कोषिष में जीवन के उद्देष्य को भूल जाता है। पैसे के पीछे वह ऐसे भागता है कि नीति, अनीति का विवेक भूल जाता है। अपनी आवष्यकता अनुसार भविष्य के लिए धन संचय को यहाँ तक तो वाजिब है पर अनीति और अधर्म से धन एकत्रित करना पाप है धन की पोटली बाँध कर आजतक कोई ऊपर नहीं जा पाया है। पूरा जीवन धन संचय में बिताने वाले मनुष्यों पर कबीर ने धारदार कटाक्ष किया है–

''कबीर सो धन संचिये, जो आगे कू होई।
सीस चढ़ाये पोटली, ले जात न देखा कोई।।''[5]

इस विषय में भी कबीर आज प्रासंगिक हैं क्योंकि आज हमारे समाज में लोग धन के लिए अपनों का खून करने से भी नहीं हिचकिचाते है। धन के लिए लोग जितना नीचे गिरना पड़े गिर जाते हैं। कोई भी अनैतिक कार्य कर बैठते हैं।

निष्कर्ष

वर्तमान युग में कबीर की प्रासंगिकता जानने के लिए, यह जरूरी हैं कि हम उनके जीवन–दर्षन एवं विचारधारा की उनकी रचनाओं के आधार पर सम्यक् विवेचना करें। समाज के अप्रिय रीति को देखकर कबीर उस पर उन्होने इतने तीखें प्रहार किये कि–ढ़ोगी बाबाओं, ब्राह्मणों, मौलवियों जिन्होंने समाज में अंधविष्वास के माध्यम से अपना दबदबा बना रखा था उनके दिखावों की धज्जियाँ उड़ गयी। उनकी वाणी में तीखा एवं अनोखा व्यंग्य देखने को मिलता है, जो कि बौद्धिकता की कसौटी पर खरा उतरता है। कबीर की पावन वाणी आज के समाज और विषमताओं के परिप्रेक्ष्य में उतनी ही प्रासंगिक, तेजोमय तथा उपयोगी यिद्ध होती है, जितनी कि तब भी।

संदर्भ

1. वही पृष्ठ–83
2. कबीर ग्रन्थावली, संपादक–डॉ. पुष्पपाल सिंह, पृष्ठ–19
3. वही पृष्ठ–78
4. वही पृष्ठ–487